(कविता सग्रह)

प्रिय हरीश के लिए
जो इन कविताओं का
साक्षी है

रेत की नदी

मानिक बच्छावत

धरती प्रकाशन

माणिक बच्छावत

प्रकाशक धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर (राजस्थान) / मुद्रक एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 / संस्करण प्रथम 1987 / मूल्य पच्चीस रुपये मात्र /

RET KI NADI (Poetry) Manik Bachavat
Price Rs. 25 00

अपने
उन
विस्मृत पुरखो की
स्मृति मे
जिनके अवशेष
आज भी
इस जमीन पर
शेष है।

क्रम

रेत की नदी

वर्षों से पडी हू मैं
अछूती
मर्मभरी पीतवर्णी
दर्दीले मरुस्थल की
छाती पर
पसरी
स्वर्ण-झरी
परी-सी लेटी
निवसना
पीताभ रेत कणो के
झर-झर क था।
अपने निष्कासन के
दु ख की परती-कथा
सहती रही व्योम के
उतप्त ताप का
क्रोध
झेलती रही
उष्ण कटिब धी हवाओ का
जोर
सुनाई पडता रहा
अपने ही आर्तनाद का रौरव
शोर।
सूख गई हू मैं

वर्षों पहले लुप्त हुई हू मैं
और मेरे किनारे अब
समतल हो गये हैं
किसी पुरावेत्ता की
खोज की पहचान के लिए
सिर्फ रेखांकित हैं।
अब मैं केवल
सूखी हड्डिया हू
पसलिया हू
आतडिया हू
उन जलचरो की
जो मेरे उदर-पाश मे
स्वच्छन्द विचरते थे
कौतुक केलि करते थे
क्रीडा करते थे
मैं अब सद्य रेत-स्नाता हू
भूगर्भ का मर्म भरा
विरान खाता हू
लेकिन एक दिन उठूगी
हरी हूगी
तब मैं कहूगी
अब रेतीली नहीं हू
मैं
रेत की नदी।

काली हिरणी

काली हिरणी
कुलाचे भरती
सर्-सर् करती
इधर को आती
अर्-अर् करती
उधर को जाती
उधम मचाती
कानी हिरणी।

रेत मे रमती
सीग लगाकर
रेत उठाती
रेत गिराती
चौक्स होकर
कौतुक आखें
इधर देखती
उधर देखती
उनमनी बावरी-सी
लगती मादक तरुणी
हिरणी
चिबुक हिलाती
चिबुक डुलाती
पास बुलाती

वर्षों पहले लुप्त हुई हूं म
और मेरे किनारे अब
समतल हो गये हैं
किसी पुरावेत्ता की
खोज की पहचान के लिए
सिर्फ रेखांकित हैं।
अब मैं केवल
सूखी हड्डियां हूं
पसलियां हूं
आतडियां हूं
उन जलचरों की
जो मेरे उदर-पाश मे
स्वच्छन्द विचरते थे
कौतुक केलि करते थे
क्रीडा करते थे
मैं अब सद्य रेत-स्नाता हूं
भूगर्भ का मर्म भरा
विरान खाता हूं
लेकिन एक दिन उठूंगी
हरी हूंगी
तब मैं कहूंगी
अब रेतीली नहीं हूं
मैं
रेत की नदी।

काली हिरणी

काली हिरणी
कुलाचे भरती
सर्-सर् करती
इधर को आती
अर्-अर् करती
उधर को जाती
उधम मचाती
काली हिरणी।

रेत मे रमती
सीग लगाकर
रेत उठाती
रेत गिराती
चौक्स होकर
कौतुक आखें
इधर देखती
उधर देखती
उन्मनी बावरी-सी
लगती मादक तरुणी
हिरणी
चिबुक हिलाती
चिबुक डुलाती
पास बुलाती

अल्हड़ युवती जैसी
सरपट भागी जाती
फिर हाथ कभी न आती
वाली हिरणी।

फॉसिल्स

हजारो वर्ष पहले
वृक्ष थे हम
वृहदाकार थे हम
छायादार थे हम
अब हम सूख गये है और
कोरा काठ रह गये हैं
काठ से पत्थर हो गये है।
वर्षो से हम भूगर्भ मे
धसे खडे हैं
क्षत विक्षत होकर
इधर उधर लुढके पडे है
लोग हमे ढूढ रहे हैं
एकत्र कर रहे है
साथ-साथ रखकर
जोड रहे हैं।
लगता है वे
हमारे होने का अन्दाजा लगा रहे है
हमारी और हमारे
पुरखा की जाति का पता लगा रहे है।
हमारी अस्थिया और
ये जीर्ण-शीर्ण भग्नावशेष
पुरा-इतिहास मे नये
पन्ने जोडेंगी।

नई उद्घोषणाएं होंगी
भूगर्भ शास्त्रियों को
नया काम मिलेगा और
उन्हें नाम मिलेगा
लेकिन हम इसी तरह रहेंगे
कुछ नहीं कहेंगे
हम महज फॉसिल्स हैं
हमें पहचान कर भी क्या होगा ।

सोनल

वह सोने के रंग की थी
नटिनी जाति की थी
नाचती थी
इधर-उधर फुदकती थी
फिरकी की तरह चहकती थी
और फिर कान पर बाया हाथ
रखकर कोई एक मादक
लोकगीत का
आलाप करने लगती थी
ढोलक की थाप पडती थी
वह बैठती थी/उठती थी।
इधर-उधर
घूमर करती थी
उसके घघरे का घेर
कई लोगो के मन को
फेर रहा था और
वह सबको हेर रही थी
अपने गीत को टेर रही थी
सोना-वर्गीय हू मैं
नाचूगी मैं
गाऊगी मैं
पर सग किसी के

न जाऊंगी मैं
सोनल हूं मैं
मुझे न छूना।

गयी रात रेत पर

गयी रात रेत पर
लेटा रहा मैं
चादनी मे
छनकर मीठा प्रकाश छूता
रहा मुझे
ठण्ठी हवा गुप-चुप
कुछ कहती रही मुझे
मुदी आखो से
महसूसता रहा मैं
देखता रहा तुम्हे
और भरता रहा रेत मे
मुट्ठिया
गिराता रहा उन्हे
रेत के टीले पर।
कौंधती रही बार-बार रोशनी
हिरणी की आखा से
बादामी रग छनकर आता रहा
मेरी आखो मे
औ नजदीक बसती रही तुम
करवटें बदलता रहा
टीले पर
किसी भी नरम बिछौने से अधिक
नरम

वदन मे लगती रही एक अथक
खुमारी सी
छूती रही शीतल बयार
दूर की ढाणियो से
सुनाई पडते रहे
लोकगीतो के मादक स्वर
डोमनिया नाचती रही वहा
खुलकर
हा, चादनी रात मे
चाद की तरह
देखता रहा तुम्हे
समेटता रहा तुम्हे
यादो के साये मे
कचोटती रही तुम्हारी
अनुपस्थिति।
रात भर पीता रहा मैं
रेत के टीले पर
झरता रहा जैसे कोई
अमृत
अजुरी भर पाने को
प्यास
कभी बुझी नही
गयी रात रेत के
टीले पर
तडपता रहा मैं।

सोनार किल्ला

सुवह सूरज के निकलते ही
रोशनी उस किल्ले पर
छा गई
और सब कुछ सुनहला हो गया
पल भर मे उस सोये हुए
पत्थर का रग वदल गया
लगा जैसे वह भी मेरी
तरह अगडाई लेकर
अभी-अभी उठा है ।
मोमल की खिडकी से
झाक्कर देखा
दृश्य देखने लायक था ।
पूरव से निकलने वाले एक
साथ कई रगो मे
उस पत्थर पर केवल एक ही
रग वनता था ।
हल्का पीला/सुनहला था वह
पीत-वण
झिलमिलाता रहा किसी
चौखटे मे कसी हुई म्यूलर की
कला-कृति की तरह
याद अचानक आ गई मुझे
मेरे शहर के विख्यात

फि-मकार-शिल्पी
सत्यजित्त रे की
शायद ऐसी ही कोई
सुबह होगी वह
जिस दिन वह यहा आया होगा
और उसे भी
आज की इस ताजा सुबह का
दृश्य
मेरी तरह भाया होगा।
भाटियो ने सचमुच
इस भाटे को अपना
रग दिया है
कभी-कभी इच्छा होती है
मैं भी अपना घोडा लेकर
इस पर दौड़ू और
खुली तलवार लेकर इसके
बुज पर खडा हो जाऊ।
पर अब तो ऐसा सिर्फ
इतिहास मे / नाटको मे / फिल्म मे ही
सभव है
या फिर यहा महज शैलानी
बनकर ही आया जा सकता है
पत्थर का यह मोल किसी भी
रत्न भडारो से कीमती है
सोने का किला है
सचमुच सोने का है यह।

चील

उस रात
हवेली की छत की मुडेर
पर आकर बैठ गई
वह चील
अधेरे मे जलती रही उसकी
आखें किसी अगारे की तरह
लगता रहा
वह बहुत थक गई है या
बीमार है।
गर्मियो मे छत पर
बिताते है रात
मौसम की ठण्डी हवा
प्राण देती है
जब कि दिन की गर्म हवा
हर लेती है प्राण और बेतरह
थका देती है।
रात सुहावनी और शीतल है पर
चील का छत पर होना
निरन्तर भय पैदा कर रहा है
और अब सोना मुश्किल है।
कभी-कभी लगता है
चील मा बनने वाली है और
अपने बच्चे के लिए

किसी घोसले की जगह खोज रही है
पर जो भी हो
चील डटकर बैठी है
किसी आदिम भय की तरह
मैं काप रहा हू
क्या यह कोई अपशकुन तो नही
अपने किसी प्रिय का
कोई अनिष्ट तो नही
तब तक अचानक
पडोस के मकान के
तहखाने से चमगादडो की
आवाजे आने लगती ह
वे फडफडाते हुए निकल पडते हैं
और चील यकायक उन पर
झपटते हुए चली जाती है।
अब मैं
अपने आपे मे आ जाता हू और
सासे ठीक चलने लगती है
और धीरे-धीरे
चील का वहा होना
समझ मे आने लगता है।

रेत का समुद्र

हम चलाते है नाव
रेत के समुद्र मे
जैसे पैर हो
चप्पू
एक उठता रेत मे
दूसरा गिरता हुआ
रेत जैसे रेत न हो
वल्कि जल हो
हम खेते हुए चलते है
अपनी नाव रेत मे
सारा दृश्य ठीक
वैसे ही वनता है
जैसे समुद्र की
छाती हो
फक सिफ इतना है कि
वहा जल होता है
गहरा, हरा या नीला
और यहा रेत का रग
पीला है सिफ पीला
आसमान यहा भी
चूमता है उन किनारो को
जो नही दीखते और
वहा भी

आसमान से चिपकती हैं वे
लहरें जल की
और यहां सिर्फ लहरें बनती हैं
रेत पर
दृश्य यहा भी वही होता है
रेत हवा के तेज झोंका से
उठती है और
भवर बन फैलती है
साय-साय बोलती हुई
और वहा समुद्र मे भी
वैसे ही गर्जन करती हुई
लहरें वह जाती हैं।
यहा रेत के समुद्र मे
चलते समय
रास्ते मे कभी-कभी काफिले
मिलते हैं ऊटो के
हाथ हिलाते हुए
कुशल-क्षेम पूछते हुए
वहा किश्तियो मे सवार
लोग मिलते है
दूर से हाथ हिलाते
शुभकामनाए देते हुए।
समुद्र मे पीने का पानी
लेकर ही जाना होता है
और रास्ता भूल जाने पर
भूख से प्यास से मर जाना
पडता है।
ठीक वैसे ही रेत के समुद्र मे
पीने के पानी के बिना
रास्ता तय करना मुश्किल है और
भटक जाने पर रास्ता

प्राण गवाना पडता है ।
खैर ! आधिया दोनो जगह उठती हैं
एक मे रेत लील जाती है
दूसरे मे जल
फर्क सिर्फ इतना है
आदमी का आत्मबल ही है
जो रेत के समुद्र मे
बिना नाव पाव से चलता है ।

बेरिया

बेर की झाडिया
झुकने लगी है
बेरिया लगने लगी है
पकने लगी है।
हरी-लाल-पीली
गोल-गोल
छोटी-छोटी
बेरिया
दूर से टिमटिमाते तारो सी
दिखती
हवा के झोका पर
पेंगे मारती
हिलती-डुलती
इठलाती
जमीन पर गिरने लगी है
किशोरिया
उचक-उचक कर
उन्हे तोड रही हैं
अपना आचल भर रही है
बेरिया अब उनके
आचल सी लग रही हैं
बेरिया अब चमक रही हैं
गमक रही हैं।

कैर

एक हरी कटीली
झाड़ी
मरुभूमि में ऊगती।
जिसकी डाल पर
फलते
हरे-हरे
छोटे-छोटे
कैर।
कहते हुए
लोगों से
रहो तुम अपनों बीच
हो भले ही
वैर।

एक सुनहरा दिन

मैं अपने प्रिय के साथ हू
वह मेरे साथ है
मेरे हाथ मे उसका हाथ है।
हम चढते है सूरज के
साथ
और दिन है सुनहरा होता हुआ।
किले के पत्थरो पर
पडती है किरण और
मैं अपनी प्रिया के हाथ मे
हाथ बाधे
अठखेलिया करते हुए
ऊपर उठता हू
पूरा किला प्रकाश-पुज का
खोल बनता हुआ।
लगता वही
धूप-छाव की
आखमिचौनी खेलता हुआ।
बडे-बडे महलो के साथ
आती है अटारिया
झरोखे की बारीक जालिया
मैं अपनी प्रिया को
एक झरोखे मे बैठाता हू
बाहर से झाककर देखता हू

लगता है—
बैठी है कोई राजपूत
रमणी
अपने प्रिय योद्धा की
प्रतीक्षा करती हुई
पास ही मन्दिरों का
शिल्प है
नगाडो की आवाज करता हुआ।
हम अपना सारा दिन
किले को समर्पित करते हुए
उतरते है
अपनी प्रिया को
सुनहरे रगो में
डूबा हुआ देखते हुए
याद करते हुए
इस एक सुनहरे दिन को।

मेहदी

बगीचे से निकलते हैं हम
रुकते हैं पाव
एक महकती हुई
खुशबू चखते हैं
जो हवा मे तैरती है
इधर-उधर
और उसकी लपट
मन को छूती हुई
इतराती चली जाती है ।

ऐसी शाम
कभी होती है
अमराई
मेहदी की मीठी गध
सोधी-बास
करती है मदहोश
किसी यौवन की चौखट
पर बैठी
अल्हड युवती की तरह
रची हथेलिया और
पिण्डलिया तक छूता हुआ
हरा रग
लज्जा से लाल होता हुआ

महकता हुआ
मेंहदी के फूलों की
याद
ताजा करता हुआ।

पोकरण

लाल पत्थरो की
हवेलियो को देखकर
लगता है ये
खण्डहर एक
अस्त हुई सभ्यता के
शिला लेख है।
सैकडो वर्ष पहले
यहा आबादी थी।
अर्थ था / व्यवस्था थी।
पर अब सब
विरान मरघट-सा है
रह गये है केवल
भग्नावशेष
एक भूली हुई सभ्यता के
उस कालखण्ड के
जब सब कुछ जीवन्त था
और अब
सब मृत है
पोकरण की छाती पर
इतिहास की कब्र है।

हम कत्ल कर दिये गये
मर गये
मौत ने हमें मिटा दिया
पर
हम इतिहास बनकर
जी रहे है
अपनी जड़ो को
तलाशते है।
भूल नहीं पाते हैं
इसलिये बार-बार लौटकर आते हैं।

रेत की आंधी

रेत में गाड़े हुए हैं
खेमे
समूहों में लग रहे
चितकबरे।
हिरणों के शरीरों की तरह
भड़कीले
इन रंगों में उनके सन्धान के लिए
कोई मुश्किल नहीं
वैसे यह जगह भी
कोई अन्तिम मुकाम नहीं
न कोई अन्तिम प्रहर भी।
चलें/उठें/खड़े हों
खेमे समेटलें या फिर
अपने ऊंटों पर
पलाण कसलें और दूर तक
हो आंच
मौसम का जायजा ले लें।
आ गई कहीं यदि
आंधी
उठी धूंवार होकर किसी
विपाक्त बवण्डर-सी
काली-पीली तो
सब कुछ लील जायेगी

और सब कुछ दब जायगा।
कोई तब रास्ता नही होगा
न होगी कोई मजिल
एक भटके हुए जहाज से
हिलोरें लेते फिरेंगे हम
खो जायेंगे/रेत मे भरपूर सन जायेंगे
और पड जायेगी यही
शाम और रात भी
और हम ढूढेंगे
अपनी गर्दीली हथेलियो से
रात के तारो को, क्योकि
तब और वहा
रास्ता बताने के लिए
कोई नही होगा।

उस गाव मे

शाम को जब हम
थके होगे, हारे होगे तो
वहा रुकेगे।
उन ढाणियो के बीच
जहा ढिबरियो के जलने की
तैयारिया होती होगी
और तब हम होगे वहा
बिना बुलाये मेहमान।
उस छोटे से गाव भर के
लोग, हमे
घेर लेंगे और
खोल देंगे अपना घर।
उडेल देंगे सब कुछ
और देखते-देखते हम
थालो पर बैठे होगे
खाने के लिए
बाजरे की रोटिया/प्याज के टुकडे/
लहसुन की चटनी।
पियेंगे केशर-कस्तूरी
सब कुछ भर जायगा एक
अजीब रूप-गध से
आगन के पार से आती होगी
कोई आवाज।

रह-रह खनकती होगी चूड़िया
ग्राम-गीतो की मधुर ध्वनि से ।
घूघट उठाकर देखती
मृगलोचनी बहुए ।
कोई अनजान मेहमान
जब रात पडने पर होता
होगा यहा से विदा
ऐसा लगता हुआ
अपना सब कुछ यहा
छोडता हुआ चला गया
वह ।
पर सचमुच साथ लेता गया
वह ।
एक ही शाम मे
वे कितने हो गये अपने
किसी सपने की तरह
लगता रहा सब कुछ
उस शाम को
उस गाव मे ।

नमक का खेत

चिलचिलाती धप मे
चादी-सा
चमकता है नमक का खेत
पास ही बिछी-फैली है
पसरी रेत।
पानी के तरल हरे-गहरे
और कभी-कभी नीले रग मे
डूबा है वह
पैरो तक/फावडा चलाता
नमक का आदमी
नमक की ढेरिया
लगती पिरामिडो की तरह
और ये ऊट भरते जाते
अपने ऊन के वस्ते।
यहा लगता
नमक महगा और
आदमी सस्ते
फिर हसते-हसते
कोई एक लोकगीत की
कडी गुनगुनाते
नमक बनाते
ये हाथ ठीक वैसे ही
जैसे गाधी ने अपनी

हथेलियों से बनाया था
नमक।
कभी जस्ते और
राख के रगो मे
उभरता यह नमक।
फैलती है एक चमक
और तैरती है
अजीब गन्ध-गमक।
सफेद रग के
पहाडो पर खडा है
एक ककाल
नमक के खेत के
बीचोबीच स्याह
पडता हुआ और
तपते सूरज मे
नमक का खेत हसता हुआ
चमचमाता हुआ
लहलहाता हुआ।

चोखेर वाली

अब रेत से हो गया है
कोई रिश्ता
मैं उससे घुल-मिल
गया हू/एकाकार हो गया हू
वह अब खाने मे है
पीने मे है
सोने मे है/नहाने मे है।
अग-प्रत्यग मे घुस गई है
नश-नश मे, रग-रग मे
धस गई है।
दीखते हैं टीले और
रेत के पहाड सुनहले
दूर तक फैले हुए
एक अथाह सागर की तरह
लहरियो वाले चित्र बनाते हैं
किसी सुख मखमल की
तरह या फिर
पीली धारीदार
मलमल की तरह
एक चादर बिछाते हैं।
आख को भी
यह सब कुछ मिलकर
रेतीला बनाते हैं

यह एक अद्भुत
लैंडस्केप है जो किसी
रंगीन छाया चित्र-सा
बनता हुआ ठहरता है
गम और खुश्क लू वाली
हवा
तन को छूती है
रेत उड़ती है
सारे शरीर में बसती है
हाथों पैरों पर होती है
नासिका में घुसती है
और आंख की किरकिरी
बन पलकों पर
रवी ठाकुर की पंक्ति बन
उतरती है।
हम कपड़े झाड़ते हैं
शरीर झटकते हैं
पर रेत जोंक की तरह
जमकर चिपक जाती है।
हम रेतीले हो गये हैं
रेत से अब रिश्ता
और गहरा हो गया है।

श्यामली

एक खुटकी रास्ते से
चलते हुए
मिली थी वो
ताम्रवर्णी
कृष्णकाय/कृष्णकली
खजुराहो की यक्षिणी
प्रतिमा की तरह
खडी थी वो
रूपसी
उसके बारे मे
लिखना मुश्किल है
कहना मुश्किल है
सिर्फ देखते ही
प्रेम करना है
प्रथम दृष्टि मे
बाहो मे भर लेना है।
कभी नही देखा
ऐसा अपरूप
ऐसी सुदृढ देहयष्टि
मादक चाल वाली
गोलाकार नितम्बो वाली
तराशी हुई
स्थापत्य की उत्कीर्ण

काया
नवयौवना
वह तरुणी
जिसकी पवित्र-अल्हड
निर्दोष हसी से
परास्त हो जाय
बडे-बडे शूर-वीर योद्धा
घुटने टेक दे
वह निश्छल
निष्कपट
उदात्त काम-कन्या
अपने उरोजो को
खुले केशो से ढकती हुई
परिचय मे
मुह खोलती है
नाम अपना बोलती है
मैं न हू नीमली
न हू आमली
मेरा नाम तो है
श्यामली/श्यामली ।

उजडा शहर

अब उन घरो मे
कबूतर रहते हैं जिनमे
पहले आदमी रहते थे।
पूरा शहर एक
श्मशान के मानिन्द है
जो एक उजडे बियाबान
घाट की तरह है
जहा किसी लहर का
शोर तक सुनाई नही देता।
हा, वहा अब बसते है
उल्लू, चमगादड और
रात को भौकते हैं
सियार कभी-कभी
कुत्ते भी।
लाल पत्थर का लहू
सूखकर सख्त हो गया है
कही-कही
बडे बरगद की छाह मे
बसा हुआ है
योगिया का डेरा
गाजे के कश से आबाद है
यह खोहनुमा
चबूतरा।

सभ्यताएं आती हैं और
जन्म लेते हैं
शहर
संस्कृति का प्रतीक
बनता इतिहास
कई सदियां तक लगता है
जैसे कोई
मेला
खींचता है अपनी ओर।
लोग
चले आते हैं
दूर-दूर से और इस तरह
आबाद होते हैं
शहर।
सभ्यता विकसित होती है
कुछ सदियां तक
सब कुछ प्राणवान लगता है
कुछ अर्थ देते हैं/शैली देते हैं
यहां के शिल्प
मण्डप/मन्दिर/अट्टालिकाएं/
किले/बड़े-बड़े प्रासाद और
उद्यान।
सजते हैं/भर उठते हैं
हरे-भरे दृश्यों से
झीलों और तालाबों से
और न मालूम फिर कुछ
शताब्दियों बाद
अचानक हम देखते हैं
इन सबों को
इतिहास के पृष्ठों पर और
ढूंढ़ते हैं

इन उजडते हुए नगरो और
उद्यानो के
ध्वासावशेष खण्डहरो को
जो एकदम वीराने नजर आते है
इतिहास यहा
दुहराते हुए नजर आता है
हम सचमुच
खण्डहरो मे ही
उजडे हुए शहर की
सस्कृति की/सभ्यता की
शिल्प की
पहचान करते हुए
आश्चयचकित होते है और
तब हमे अफसोस होने
लगता है और
समझ नही आता
आखिर ये शहर
उजडते क्यो है
पर भूल जाते हैं
शहर भी जीवधारी है
एक मरता है
दूसरा जन्मता है।

तैरते हुए झील के महल

वहुत अच्छे लगते हैं
तैरते हुए झील के
महल/वहुत अच्छे।
किनारे-किनारे चारो तरफ
वने हुए ये
अपने गुम्बजो, अटारियो
झरोखो की जालियो मे
झाकती हुई
आकृतिया।
मछलियो को दाना
चुगाते वे कोमल
हाथ फेंकते फेकते
दाना
खनकते हैं
एक सरसरी आवाज
पैदा करते है
कम्पन भरी।
इस सुनसान अकेलेपन मे
कोई नही होता।
हम लेटते है
अटारियो मे
विछी आराम-कुर्सियो पर
पसरते है

एक ऐसा विश्राम पाते हैं
जो वर्षों चाहने पर
नहीं मिला था।
झील के पानी मे
देखते है
महलो का प्रतिबिम्ब
फिर अपनी आकृति भी
जिसे वनते हुए विगाडते है
एक के वाद एक
ककर फेककर
शब्द उठते हैं डूप्प/
डूप्प/
महल की आकृतियो को
डूवाते हुए
कापती है उनकी काया
क्षण भर के लिये
फिर सव कुछ दिखता है
स्थिर होता हुआ
ठीक वैसे ही जैसे पहले था।
महल के सूने मे
अकेले होना
एक अजीव आश्चर्य पैदा
करता है और एक
सनसनीखेज अनुभव देता है।
दिन को परेवो के साथ
और रात को
पार तक झिलमिलाती
रोशनी के साथ
जो झील को एक
नया रूप देती है।
महल एक सोये हुए

तैरते हुए झील के महल

वहुत अच्छे लगते है
तैरते हुए झील के
महल/वहुत अच्छे।
किनारे-किनारे चारो तरफ
वने हुए ये
अपने गुम्वजो, अटारियो
झरोखो की जालियो मे
झाकती हुई
आकृतिया।
मछलियो को दाना
चुगाते वे कोमल
हाथ फेकते-फेंकते
दाना
खनकते है
एक सरसरी आवाज
पैदा करते है
कम्पन भरी।
इस सुनसान अकेलेपन मे
कोई नही होता।
हम लेटते है
अटारियो मे
विछी आराम-कुर्सियो पर
पसरते है

एक ऐसा विश्राम पाते है
जो वर्षों चाहने पर
नही मिला था।
झील के पानी मे
देखते है
महलो का प्रतिबिम्ब
फिर अपनी आकृति भी
जिसे बनते हुए बिगाडते है
एक के बाद एक
कंकर फेंककर
शब्द उठते हैं डूप्प/
डूप्प/
महल की आकृतियो को
डूबाते हुए
कांपती है उनकी काया
क्षण भर के लिये
फिर सब कुछ दिखता है
स्थिर होता हुआ
ठीक वैसे ही जैसे पहले था।
महल के सूने मे
अकेले होना
एक अजीब आश्चर्य पैदा
करता है और एक
सनसनीखेज अनुभव देता है।
दिन को परेवों के साथ
और रात को
पार तक झिलमिलाती
रोशनी के साथ
जो झील को एक
नया रूप देती है।
महल एक खोये हुए

संगीत के साज जैसे
लगते है
झील पर झूलते हुए लगते है
ये महल
जहा न कोई चहल न पहल
वस है केवल
कोई एकान्त सगीत
लगता है जैसे
अभी वजा/अभी वजा।

अन्तहीन रेत का सैलाव

सब कुछ शान्त है
ऐसा थमा हुआ
लगता जैसे रेत की
चादर ओढे सोई हुई है
यह जमीन
पसरी हुई किसी परी की
तरह निश्चित/बिल्कुल सोई हुई।
रेत के कणो मे एक
परम्परागत जमावट है
स्थिरता है
निस्तब्धता है/भावुकता है
उसके सस्कारो मे
किसी भी तापमान की
सहचरी वनने की
उष्ण से होती उष्णतम
और शीतल भी कुछ
ऐसी जो कभी भी
वर्फ का जायका देती हुई
और विगडती है यह
हवा पानी आधी के
सग होती हुई
किसी त्रिकाल भैरवी की तरह
ताण्डव करती हुई

महाकाल का रौद्र
रूप धरती हुई
साक्षात चण्डी-सी
उठती है किसी
बवन्डर के साथ
धूल-धूसरित करती हुई
सारे आसमान को
कुछ इस तरह
क्षण भर के लिये
कुछ भी दिखाई नही देता
सिर्फ हवेलिया, परकोटे,
गढ और झोपडे
हिलते-डुलते नजर आते हैं
ठीक उसी तरह
जैसे सपनो मे हवामहल
तैरते दिखाई देते है
और तब होता है
सब जगह रेत का साम्राज्य
इस तरह फैलाव कि
आदमी के जिस्म पर
जमती है रेत और
रेत मे डूबा हुआ आदमी
लगता है कुछ अजीब-सा
वह और उसका
सब रेत से ढका हुआ
एक भयानक आवाज
और गरज के साथ
यह एक
जलजला-सा
हजारो घोडो के वेग से
तेज बहता हुआ

लगता है सचमुच
आ गया है अन्तहीन यह
रेत का सैलाब
जिसका न दिखाई पड़ता
कोई ओर न कोई छोर।

एक आदिम प्यास

हजारो वर्षो से
प्यासी है जमीन
प्यासी ।
प्यास इतनी कि सारे
समुद्र को लील जाये
एक चुल्लू ऊपर उठाये
और पाच नदियो का
जल
क्षण भर मे पी जाये ।
हा, लोग इतने प्यासे कि
इतना पानी पीने पर पता ही
न चले कि वह
कहा, ओझल हो गया ।
वर्षों बादलो की
तरफ आखे फाड-फाड कर
देखना
तपती सूखी बजर जमीन को
नथुने फुला-फुला
सूघना
ताकि पता चल सके
है कही वह जल
है कही कोई आदिम जल-गध
इस अनन्त के गह्वर मे

रेत के पाताल मे ।
है कही कोई सुरक्षित
बची हुई अजस्र
जल-धारा जो
जीवन को प्राणवान कर दे
वन-पशु पौधो
वनस्पति को हरा-भरा कर दे
या फिर कोई
ऐसा प्रतापी पैदा हो जो
चीर लाये इस मरुस्थल की
छाती पर
जल की एक धारा
या फिर एक उफनती हुई
नदी का
रुख इधर मोड दे
इसकी नगी
चिलचिलाती
बादामी काया पर
एक नदी
यो की यो धर दे ।
प्यास के मारे
यहा वर्षों इतिहास के
पन्ने सूख गये
भूगोल सपाट हो गया
बस्तिया विरान हो गईं
शहर खण्डहरो मे
बदल गये
सभ्यता
पुरातत्व का विषय बन गई
और इस महाप्यास के
चलते
यहा के आदि पुरुष बनजारे

वने घूमते हैं
दर-दर भटकते हैं
अजनबी यहा बहुत कम आते हैं
और यदि आते हैं तो प्यास की
शुरूआत के पहले ही
लौट जाते हैं।
रेत के
रन्ध्र-रन्ध्र, पोर-पोर मे
धसी है एक
आदिम प्यास
जिसे कोई भी
यहा आकर महसूस कर ले
लाख चीखे-चिल्लाये
जल नही है/कही जल
बस, मुट्ठिया रेत मे
भर ले
इतना ही कर ले
काश ! यहा रह ले
जी ले।

भींगी रेत

कभी-कभी महीनो बाद
वर्षों बाद रेत भीगती है।
वर्षा की बूंदें
टपक-टपक पडती हैं
रेत अलसाई हुई है
तंद्रा तोडती है
लगता है एक-एक
बूंद पानी यो पडता हुआ
रेत का सारा शरीर सहजता हुआ
संवरता हुआ/सिकुडता हुआ
कंचन होता हुआ
बनता हुआ एक अनिन्द्य
सुंदरी-सा
जो एक लम्बे अर्से बाद
सद्य स्नाता हुई है
छुई-मुई-सी
कोमलान्गी यह
ढुल मुल
अंगडाईया लेती
बदन तोडती
ऐसा कोमल/नरम और
मासूम है
उसका सब कुछ कि

प्रथम स्पर्श के छुअन की
तरह
सकुचित हो जाती है।
अपने ओठों पर बिखरे
वाष्प की तरह
आनन्दातिरेक में
विह्वल हो जाती है
बस, मन करता है
वह आलिंगनबद्ध कर ले
अंग-अंग सिहरन से भर दे
बार-बार वर्षा में भिगोये
भीगे/नाचे/गाये/गम के
नम हो/तर हो
और उसकी सौंधी बास
नासिका भर दे
उन्मादित कर दे
खूब खुलकर नहाये
वर्षा में
मौसम के अवारा संगीत की
तरह लहराये
वर्षा में भीगे
इतनी भीगे/भीगकर
श्लथ पड़ी रहे
पानी की पारदर्शी
चादर ओढ़े
भीगती रहे रेत
भीगती हुई।

थोर

वे हाथ अब
थोर पर ऊग गये हैं
कोई नही जानता
इन हाथो पर
किसका श्राप है।
ये कब कटे और यहा
चिपक गये
बचपन मे कहती थी
मा
कभी न पीटना अपनी
बहन को
और गुजरते थे हम
रेल से
खिडकी से दिखाती थी
मा
देखो ! देखो !!
इन लोगो ने अपनी
बहन को पीटा था
इसीलिए
ऊगे हुए हैं इनके
हाथ
थोर के पौधो पर।

अन्धी हवेली

उस विराट हवेली की
अब सारी रौनक खत्म हो चुकी है
वहा अब कोई नही जाता
उस निजन वियावान कोने मे
खडी है वह भूतहा
खण्डहरो मे पसर कर पडी है।
हम अन्दर घुसते हैं
कोई अब दरवाजा नही
खोलता
न बन्द करता क्योकि
उसकी पिरोल के टुकडो को
लोग धीरे-धीरे
ईंधन मे जला चुके हैं।
हा, अब दरवाजा खोलने या
बन्द करने की कोई
जरूरत नही।
क्योकि दरवाजे ही अब नही है।
हम अन्दर घुसते है
सीढियो की जगह एक
समतल ढाल है जिस पर
कभी घोडे ऊपर तक चढ़कर
मुख्यद्वार पर जाया करते थे।
अब सब कुछ

क्षत-विक्षित है
एक खोहनुमा कमरे मे
घुसते है
कमरा क्या है—एक गुफा है
उससे गुजरकर एक
दीवानखाना है
उसमे घिसी हुई कालीन
टुकडो मे बिछी है
जिसमे बैठा है वह
बूढा सामन्त
अपनी फटी हुई अगरखी मे
अनगिनित पैवन्द लगाये
हुक्का गुडगुडाता हुआ, अपनी सफेद
दाढी सहलाता हुआ
स्वागत मे खडा है।
झुकी हुई कमर पर
हाथ रक्खे
खम्मा घणी/घणी खम्मा
पधारो-सा
फर्माओ-सा
हुक्म-सा
शायद यह अपनी लोप होती
पीढी का
आखिरी दिव्यवान अवशेष है
सब कुछ मिटा है पर
तहजीब अभी शेष है।
दूसरी ओर जनानाखाना है
वहा पत्थरो के
जालीदार झरोखो से झाकती
पाच छह उदास युवा वहुए
अकेली—बिल्कुल अकेली है
जिन की मृगलोचनी आखो मे

अपने प्रिय की प्रतीक्षा है
घर के सारे युवा बाहर
चले गये है
बडे शहरो मे/नौकरियो मे/कामकाजो मे
वहा से आती है रकम तो
यहा चूल्हे जलते है
बूढे का हुक्का जलता है
और चलती है
दारू की खुराक भी।
किसी तरह कुनवा चलता है।
हवेली का सब कुछ
बिकता गया
उसके झाडफानूस
गलीचे, तलवारें, ढालें, शीशे और
सजावट का सारा सामान
शहर के बाहर
बडे अफसरो और नवधनिको के
बडे-बडे बगले मे सज गये
वे सारे अब सामन्त है और
घराने बनने मे लगे है
अभिजात बनाने मे लगे है
हवेली अब उस
बूढे सामन्त की तरह
बूढी हो गई है
उसके चेहरो पर झुरिया
छा गई हैं
वह धीरे-धीरे
सामन्त की तरह मर रही है।
उसके फर्श से लेकर
बुज तक
निढाल गिर गये है

उसके दात, हाथ-पावो पर
लकवा मार गया है
उसकी आखें पथरा गई है
ओर अब उसे दिखना बन्द हो गया है।
वह अ धी हो गई है
फिर कह रही है
भले ! पधारो आप !
खम्मा घणी/घणी खम्मा।

वन कहा हैं

कहा है यहा
कोई वन।
सिर्फ रूखे दरख्त है
झाडिया है/मरियल पेड हैं/क्किर है
सूखी घास है
थोट्टिया है/खेजडिया है।
वन जो कभी हरे-भरे रहे होगे
अब रेत के दामन मे
सोये हुए हैं
नीचे/बहुत नीचे
जहा लगता है अब वे
गर्भस्थ है और
वर्षो बाद बाहर निकलेंगे।
अभी समय नही आया है
इनके आने का।
हा, इन झरबेरियो मे
कटीली झाडियो मे
जिनका रेगिस्तान मे
बडी मात्रा मे होना
वन की सज्ञा देता है।
हा, रेत के अ तस्थल को
कोई कुरेदे और
जल भर दे/तर कर दे

इस जमीन को तो
शायद ऊग आये यहां
वन कभी
वरना वन कहां है
यहां वन केवल
एक सपना है।

वजर जमीन

दूर मीलो तक फैले है
ऊचाई मे ये
चौडे पाटो वाले
निष्ठुर पठार।
तावे के रगो मे
भूरे दीखते थे
विस्तृत पथरीले भूखण्ड
जो
सूरज की रोशनी मे
तेज चमकदार
पीतल की चादर की
तरह
चमचमाते है
हम इनकी लोह कवचनुमा
छाती पर
सवार होते है
चलते हैं/रौंदते है/सरपट भागते हैं
अगद के पाव की तरह
जोर जोर से पटकते हैं
पैर
पर कोई असर नही होता
कोई आवाज अन्दर के
थोथ को उजागर नही करती।

नही देती कोई चिह्न
कोई अथ/गध/सन्देह
सिर्फ
एक कर्कश
निष्ठुर/बर्बर ध्वनि ही सुनाई देती है
कही कोई
पोलापन नही/नरमाई नही
कोई सूराख भी नही
क्या करें/क्या रोपें/क्या डालें
क्या लगायें/खाद ऊरें
कहा हल चलायें
क्या सीचे
पूरी की पूरी जन्मदायिनी
मिट्टी ही प्रजनन शून्य है
वह ककरीली-पथरीली है
उर्वरा नही/शक्तिहीन है
कोई स्पन्दन नही
लगता है सदियो से
इस जमीन की सारी
सवेदना मर गई है
उसकी सजना को
लक्वा मार गया है
आखिर हम
हताश होते हैं
इसी पठारी भूमि पर
नि शब्द बैठते है
और सोचते है
क्यो न कर दिया जाय
कोई विस्फोट
ताकि
कोई विराट भूमिकम्प हो
यह धरती आलोडित हो

आदोलित हो/फूट जायें
और सृजन प्रक्रिया मे
शामिल हो जाय।
हम थक जाते है और
एक ऊची चट्टान पर बैठकर
डूबते हुए सूरज की
रोशनी मे देखते है
देखते रहते है
सोचते है
बस, इस परती पडी हुई
बेसहारा, बेजान
बाझ धरती के बारे मे
कि कभी तो कोई विराट
पौरुषवान
पुरुष आये और
इसकी बजर छाती को चीरे
और इसे प्रसविनी कर दे।

अवशेषो का गाव

यह पहले शहर था
अब गाव है
पहले बसा हुआ
अब उजडा हुआ
विरान-बियाबान
बिल्कुल सुनसान।
न ठौर न कोई ठाव
न कोई पेड न कोई छाव
तालाब कुएँ सूखे
पशु-पक्षी भूखे
ठूठो पर बैठे हैं गिद्ध
न कोई योगी न सिद्ध
तिनको मे बिखरकर
रह गये हैं खेत
जहा हाथ डालो
सिफ रेत ही रेत।
सुना है सदियो पहले
यहा से काफिले
का धार जाते थे
और वहा से भी यात्री
यहा आते थे
यह एक प्रसिद्ध
व्यापार माग था

आदान था/प्रदान था
पूरा का पूरा क्षेत्र
समृद्धिवान था
अब यहा हर घर
एक अवशेष है
पत्थरो मे उत्कीण
नक्काशिया अभी शेष हैं।

गोडावण

पहले
हमने उन्हे खूब सराहा
उसके मास का
खूब जायजा लिया
बखान किया, रसास्वादन किया
यह चर्चा जब आम हुई
और उसके मास की गध
खूब फैली तो वह
विदेशियो के थाल मे
जमकर परोसा गया
और जब वे
उसकी मास की गध के
आदी हो गये तो
वह मारा जाने लगा
भूना जाने लगा और
जी भरकर खाया जाने लगा
अब किसी विदेशी की
फरमाईश सूची मे
उसका मास अव्वल रहने लगा।
वह सख्या मे
वैसे ही कम था अब
अदृश्य होने लगा।
एक ऐसा समय आ गया

जब उसके वश मे
इने-गिने ही रह गये।
अचानक एक दिन वह
चर्चा का विषय बन गया
रेत के मैदान का यह
पक्षी
सग्रहालय मे ही न
बचा रह जाय
इसलिए
सबको चिन्ता हुई
वह अब
अखबार की सुर्खियो मे
उछलने लगा
फिर एक दिन—
अचानक आदेश जारी हुआ
गोडावण को
दुर्लभ पक्षी घोषित किया गया
जो कोई उसे मारेगा
वह दण्ड का भागी होगा
और उन तमाम
दण्ड के भागियो ने यह
घोषणा की
अब गोडावण नही रहेगा
अत गोडावण बचाओ।

जोगियो का डेरा

गाव के उजाड से
आ रही है
आवाजें
कुत्तो के भौंकने की
गदहो के रेंकने की
वे आ गये है
अपने काफिले के साथ
अपने सापो, चिडियो और बन्दरो को
लिये
डाल दिया है उन्होने
डेरा
श्मशान वाले उजाड के करीब
क्योकि
गाव मे प्रवेश करना
उनके लिए वर्जित है
जोगी हैं वे
गाव की जात के
भ्रष्ट होने का भय है ।
सुनसान वियावान
भूतहा जगह मे
ठहरते है वे
अपने कारोबार का
सारा सामान

बचते हैं वे
साप नचाते हैं
साप डसते हैं
किन्तु जोगियो को
इसका भय नही
क्योकि
जोगी कही नही बसते
वे सिर्फ काफिलो मे चलते है
डेरा डालते है
जहा मन किया
वहा रुकते है फिर
डेरा समेट चल देते है
एक समय वाधते है
जादू-टोना करते हैं
भूत-प्रेत उतारते है
एक शरीर से दूसरे
शरीर को झाडते है
फूकते है
जब समय की मियाद
खत्म होती है तो
इनका डेरा उठ जाता है
वे फिर उस ठाव
नजर नही आते
कही दूर
दूसरे गाव चले जाते हैं।

ककाल

अथाह रेत के
फले तल पर
उभरते हैं
ककाल जो
कभी अकाल-कवलित हुए
अस्थि पजरो मे विखरकर
पडे हैं।
रास्ता भूल जाना
मरुभूमि मे
कितना यन्त्रणामय है और
उसका परिणाम
कितना भयावह है
रेत मे जिन्दा दफन होना
कितना कारुणिक है
इस दृश्य को देख पाना
असभव है
मात्र सोचना ही एक
सिहरन पैदा करता है।
वह एक युगल था
युवा प्रेमी युगल।
ढोला मरवण की तरह
ऊट पर सवार
अपने ठिकाने की ओर था

उसका गन्तव्य पर
अब ककालो मे
पडा हुआ है
सब कुछ पुराने इतिहास की
तरह
किताबो मे दबा हुआ
उनका अवशेष
हड्डियो मे बिखरा हुआ
दो जोडा झर-झर कन्था हुई
ऊनी बरडिया
ऊट की सजावट के सामान
टूटा हुआ पलाण
बिखरी हुई कौडिया
छितरी पडी है आस-पास और
वही कुछ
दूर
लुढका पडा है
तबे का चरू और
मरवण का हाथी दात वाला
चूडा
अब इन ककालो के
अवशेषो मे
साबूत।



नाम   मानिक बच्छावत

जन्म   11 नवम्बर, 1938

शिक्षा   एम० ए० (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

कविता-संग्रह   नीम की छाँह/एक टुकड़ा आदमी/भीड़ का जन्म/मॉरीशस की हिन्दी कविताएँ/पीड़ित चेहरों का मर्म/एक टूकरो मानुष (बंगला)/पहचान सूँघती हुई (प्रकाश्य)/मैं एक एकान्त बन गया रे (प्रकाश्य)/

गद्य   जुलूसों का शहर/आदम सवार/ये कीर्ति स्तम्भ/भारतीय नारियाँ प्रकाश्य   कतरनें/बिना खंभे का पुल/बंगाल की चित्रकला/होटल मिष्मा-इंद्रा/फ्रीस्कूल स्ट्रीट/

अनुवाद   प्रतिद्वन्द्वी (सेरीडेन के द'राइवल्स का हिन्दी अनुवाद)

अन्य लेखन
- नियमित रूप से कला-समीक्षाएँ
- विदेशी कविताओं का अनुवाद
- 'अक्षर' कविता पत्रिका का सम्पादन

सम्प्रति   निर्यात प्रतिष्ठान में उच्च अधिकारी ।